

Volume 2; Issue 2
April to Jun 2026

E-ISSN: 3049-1134

International Journal of Political Studies

Quarterly International Research Journal



संवैधानिक विकेंद्रीकरण बनाम डिजिटल केंद्रीकरण: भारत में पंचायती राज संस्थाओं की स्वायत्तता पर ई-निगरानी तंत्र का प्रभाव

Anurag Pal¹ and Dr. Jan Muhammad²

¹Research Scholar, Department of Political Science, Chhatrapati Shahu Ji Maharaj University, Kanpur, Uttar Pradesh, India

²Assistant Professor, Department of Political Science, Ch. Charan Singh P.G. College, Heowra, Etawah, Uttar Pradesh, India

Corresponding author: anuragpalsingh21@gmail.com

सार (Abstract)

73वें संविधान संशोधन (1992) ने पंचायती राज संस्थाओं को स्वशासन की संवैधानिक इकाई का दर्जा दिया। तीन दशक बाद यह शोध पत्र एक असुविधाजनक प्रश्न उठाता है: क्या डिजिटल शासन के औज़ारों ने पंचायतों की स्वायत्तता को मज़बूत किया है, या उसे भीतर से खोखला कर दिया है? यह अध्ययन पूरी तरह द्वितीयक स्रोतों — सरकारी रिपोर्टों, वित्त आयोग के दस्तावेजों और अकादमिक साहित्य — पर आधारित है। इनके विश्लेषण के आधार पर यह शोध पत्र एक मौलिक अवधारणा प्रस्तावित करता है — “ई-अभिभावकत्व” (E-Tutelage)। तर्क सीधा है: ई-ग्रामस्वराज, PFMS-एकीकरण, जियो-टैगिंग और ऑनलाइन स्वीकृति-श्रृंखला जैसे तंत्र पंचायतों की कानूनी स्वायत्तता तो नहीं छीनते, पर निर्णय लेने की असली ताकत को चुपचाप ऊपर के स्तरों की ओर खिसका देते हैं। साथ ही यह शोध पत्र यह भी स्वीकार करता है कि इन्हीं तंत्रों ने धन के रिसाव को घटाया और पारदर्शिता बढ़ाई है। निष्कर्ष में “उत्तरदायी डिजिटलीकरण” का ढांचा सुझाया गया है, जो पारदर्शिता और स्वायत्तता — दोनों को साथ साधने का रास्ता है।

मुख्य शब्द: पंचायती राज, विकेंद्रीकरण, ई-गवर्नेंस, ई-ग्रामस्वराज, स्थानीय स्वशासन, डिजिटल केंद्रीकरण, ई-अभिभावकत्व

1. परिचय

भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी संस्थागत परियोजनाओं में से एक 1992 में शुरू हुई। 73वें संविधान संशोधन ने पंचायतों को संविधान के भाग IX में जगह दी। अनुच्छेद 243G ने उन्हें “स्वशासन की संस्था” के रूप में काम करने का अधिकार सौंपा, और ग्यारहवीं अनुसूची ने 29 विषय उनके संभावित क्षेत्राधिकार में रखे। यह केवल प्रशासनिक फेरबदल नहीं था। यह सत्ता के स्वभाव को बदलने का वादा था — फैसले वहीं हों, जहाँ उनके नतीजे भुगते जाते हैं। यह शक्ति के ऊर्ध्वाधर वितरण (vertical distribution of power) का प्रयोग था। जॉर्ज मैथ्यू ने इसे “विधान से आंदोलन तक” की यात्रा कहा — यानी पंचायती राज केवल कानूनी ढांचा नहीं, लोकतांत्रिक संस्कृति का विस्तार है (Mathew, 1994)।

तीन दशक बाद तस्वीर उलझी हुई है। एक ओर पंचायतों का डिजिटल कायाकल्प हुआ है। 24 अप्रैल 2020 को ई-पंचायत मिशन मोड प्रोजेक्ट के अंतर्गत ई-ग्रामस्वराज पोर्टल शुरू हुआ, जो आज 2.7 लाख से अधिक पंचायती राज संस्थाओं की योजना, लेखांकन,

निगरानी और अंकेक्षण का साझा मंच है (पंचायती राज मंत्रालय, 2024)। सार्वजनिक वित्तीय प्रबंधन प्रणाली — PFMS, यानी केंद्र सरकार की वह प्रणाली जो सरकारी धन के प्रवाह और भुगतान पर वास्तविक समय में नज़र रखती है — से इसके जुड़ाव ने भुगतानों को कागज़ी चेक से मुक्त कर दिया है। पारदर्शिता के पैमाने पर यह उपलब्धि छोटी नहीं है।

दूसरी ओर एक शांत, लगभग अदृश्य प्रक्रिया चल रही है। यह शोध पत्र उसे अपनी केंद्रीय अवधारणा — “ई-अभिभावकत्व” (E-Tutelage) — के रूप में सिद्धांतबद्ध करता है। अभिभावकत्व का अर्थ है वह स्थिति जहाँ कोई संस्था कागज़ पर स्वायत्त होती है, पर उसके हर बड़े फैसले पर किसी “संरक्षक” की पूर्व-मंजूरी ज़रूरी होती है। पुराने ज़माने में यह नियंत्रण नियमों और निरीक्षकों के ज़रिए चलता था। ई-अभिभावकत्व में वही नियंत्रण सॉफ्टवेयर की बनावट में उतर आता है। उदाहरण सामने है: ग्राम सभा में स्वीकृत कार्यों को ई-ग्रामस्वराज पर दर्ज करना होता है, और ज़िला प्रशासन प्रशासनिक स्वीकृति केवल उन्हीं कार्यों को देता है जो पोर्टल पर बजट-आवंटन के अनुरूप

दर्ज हों (पंचायती राज मंत्रालय, 2024)। फ़ैसले की वैधता अब ग्राम सभा के प्रस्ताव से नहीं, पोर्टल की प्रविष्टि से तय होती है। यही विरोधाभास है।

यह प्रवृत्ति भारत तक सीमित नहीं है। जेम्स मैनर ने विकासशील देशों के तुलनात्मक अध्ययन में दिखाया था कि सत्ता-तंत्रों में फिर से केंद्रीकरण की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है; विकेंद्रीकरण का औपचारिक ढांचा बना देने भर से यह प्रवृत्ति ख़त्म नहीं होती (Manor, 1999)। भारत में यह डिजिटल-पूर्व दौर में भी दर्ज हो चुकी थी। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की छठी रिपोर्ट ने 2007 में ही सिफ़ारिश की थी कि पंचायत के बजट को ऊपरी अधिकारियों से मंजूर कराने के प्रावधान हटाए जाएँ और राज्यों से जाने वाला धन बिना शर्त दिया जाए (द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग, 2007)। व्यवहार ठीक उलटी दिशा में गया। 15वें वित्त आयोग (2021-26) ने ग्रामीण स्थानीय निकायों के लिए ₹2,36,805 करोड़ के अनुदान की संस्तुति की, पर इसका 60 प्रतिशत हिस्सा सशर्त (tied) रखा — यानी पेयजल और स्वच्छता जैसी राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के लिए पहले से तय — और केवल 40 प्रतिशत पंचायतों की अपनी मर्जी पर छोड़ा (भारत सरकार,

2021)। स्वायत्तता की यह कमज़ोरी नई नहीं है। कर्नाटक के मुलबगल तालुक की 30 ग्राम पंचायतों के एक अध्ययन में पाया गया कि इन पंचायतों ने अपने ही क्षेत्र में सरकार द्वारा खर्च की गई कुल राशि का मात्र 3 प्रतिशत स्वयं खर्च किया (Accountability Initiative, 2016)। ई-निगरानी तंत्र इस पहले से सिकुड़ी स्वायत्तता पर एक नई, तकनीकी परत चढ़ाता है।

यहाँ एक स्पष्टीकरण ज़रूरी है, क्योंकि यह शोध पत्र तकनीक-विरोधी तर्क नहीं गढ़ रहा। डिजिटल भुगतान ने बिचौलियों की भूमिका घटाई है। जियो-टैगिंग ने कागज़ों पर बनी सड़कों का दौर लगभग ख़त्म कर दिया है। सार्वजनिक डैशबोर्ड ने नागरिकों को वह जानकारी दी है जो पहले फाइलों में दबी रहती थी। सवाल तकनीक का नहीं, तकनीक की बनावट में छिपे सत्ता-संबंधों का है। कौन तय करता है कि पोर्टल के डॉपडाउन मेन्यू में कौन-से विकल्प होंगे? कौन तय करता है कि किस स्तर की मंजूरी के बिना भुगतान रुक जाएगा? ये राजनीति विज्ञान के चिरपरिचित प्रश्न हैं — सत्ता कहाँ है — बस उनका मंच बदल गया है।

इसी पृष्ठभूमि में यह शोध पत्र संवैधानिक विकेंद्रीकरण और डिजिटल केंद्रीकरण के बीच के तनाव की पड़ताल करता है। अध्ययन पूरी तरह द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है और इसकी संरचना इस प्रकार है: खंड 2 में साहित्य समीक्षा और शोध-अंतराल की पहचान है; खंड 3 में सैमांतिक ढांचा है, जहाँ ई-अभिभावकत्व की अवधारणा गढ़ी गई है; खंड 4 और 5 में उद्देश्य, शोध प्रश्न और पद्धति हैं; खंड 6 चार उप-विषयों में विश्लेषण करता है; और अंतिम खंड निष्कर्ष तथा नीतिगत सुझावों के साथ "उत्तरदायी डिजिटलीकरण" का ढांचा सामने रखता है।

2. साहित्य समीक्षा

इस शोध पत्र से संबंधित साहित्य को तीन धाराओं में व्यवस्थित किया जा सकता है: विकेंद्रीकरण का शास्त्रीय साहित्य, पंचायत-वित्त एवं क्रियान्वयन पर अनुभवजन्य अध्ययन, तथा डिजिटल शासन पर उभरता हुआ लेखन। इन तीनों धाराओं की समीक्षा के उपरांत वह शोध-अंतराल स्पष्ट होता है जिसे भरने का प्रयास प्रस्तुत अध्ययन करता है।

2.1 विकेंद्रीकरण का शास्त्रीय साहित्य

भारत में पंचायती राज पर अकादमिक विमर्श की आधारशिला जॉर्ज मैथ्यू के कार्य में मिलती है। मैथ्यू (1994) ने 73वें संशोधन को केवल विधायी उपलब्धि के रूप में नहीं, बल्कि एक लोकतांत्रिक आंदोलन की परिणति के रूप में देखा, जिसकी जड़ें स्वाधीनता आंदोलन के ग्राम-स्वराज संबंधी विमर्श तक जाती हैं। उनका यह आग्रह — कि पंचायतें प्रशासनिक एजेंसियाँ नहीं, राजनीतिक संस्थाएँ हैं — इस शोध पत्र के विश्लेषण की कसौटी बनता है। यदि पंचायतें राजनीतिक संस्थाएँ हैं, तो उनकी स्वायत्तता का मूल्यांकन केवल प्रशासनिक दक्षता से नहीं किया जा सकता।

अंतरराष्ट्रीय तुलनात्मक साहित्य में मैनर (1999) का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। मैनर ने विकासशील देशों के व्यापक अनुभव के आधार पर यह स्थापित किया कि लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की सफलता तीन तत्वों की युगपत उपस्थिति पर निर्भर करती है — कार्यों का हस्तांतरण, वित्त का हस्तांतरण, और उत्तरदायित्व-तंत्र। उनका एक निष्कर्ष प्रस्तुत अध्ययन के लिए विशेष रूप से

प्रासंगिक है: केंद्रीय सत्ता-तंत्रों में पुनः-केंद्रीकरण की संरचनात्मक प्रवृत्ति होती है, जो विकेंद्रीकरण के औपचारिक ढांचों के भीतर भी सक्रिय रहती है। यह शोध पत्र मैनर की इसी अंतर्दृष्टि को डिजिटल युग में विस्तारित करता है — पुनः-केंद्रीकरण अब विधायी संशोधन से नहीं, सॉफ्टवेयर-वास्तुकला से संचालित होता है।

भारतीय अनुभव के व्यवस्थित संकलन की दृष्टि से रघुनंदन (2012) द्वारा संपादित ग्रंथ उल्लेखनीय है, जिसमें 73वें और 74वें संशोधनों के प्रभाव पर प्रकाशित पच्चीस चयनित अध्ययन सम्मिलित हैं। संपादक की अपनी पृष्ठभूमि — पंचायती राज मंत्रालय के पूर्व संयुक्त सचिव — इस ग्रंथ को नीति-निर्माण की आंतरिक समझ भी प्रदान करती है। इसी क्रम में पाल (2004) ने संशोधन के प्रथम दशक का मूल्यांकन करते हुए यह रेखांकित किया कि राज्यों द्वारा कार्यों, कार्मिकों और वित्त के हस्तांतरण में गहरी अनिच्छा विद्यमान रही, जिसके कारण संवैधानिक प्रावधान और व्यावहारिक स्थिति के बीच की खाई निरंतर बनी रही।

2.2 पंचायत-वित्त एवं क्रियान्वयन पर अनुभवजन्य अध्ययन

वित्तीय स्वायत्तता के प्रश्न पर सर्वाधिक ठोस अनुभवजन्य साक्ष्य Accountability Initiative (2016) के PAISA अध्ययन से प्राप्त होता है। कर्नाटक के मुलबगल तालुक की 30 ग्राम पंचायतों के इस अध्ययन का निष्कर्ष चौंकाने वाला था: पंचायतों ने अपने क्षेत्राधिकार में हुए कुल सरकारी व्यय का मात्र 3 प्रतिशत स्वयं व्यय किया, और कोई भी पंचायत यह नहीं जानती थी कि अन्य सरकारी निकाय उसके क्षेत्र में कितना और किस मद में व्यय कर रहे हैं। यह निष्कर्ष इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह ई-निगरानी तंत्रों के व्यापक विस्तार से पूर्व की आधार-रेखा प्रस्तुत करता है — स्वायत्तता का संकुचन डिजिटल युग की देन नहीं, बल्कि एक पूर्ववर्ती संरचनात्मक स्थिति है जिसे डिजिटल तंत्र ने नया रूप दिया।

संस्थागत सुधार की दिशा में द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (2007) की छठी रिपोर्ट एक महत्वपूर्ण संदर्भ-बिंदु है। आयोग ने स्पष्ट संस्तुति की थी कि पंचायतों के बजट को उच्च प्राधिकारियों से अनुमोदित कराने के प्रावधान समाप्त

किए जाएँ तथा राज्य सरकारों से पंचायतों को जाने वाली निधियाँ असशर्त स्वरूप में हस्तांतरित हों। यह रिपोर्ट इस शोध पत्र के विश्लेषण में एक मानक (benchmark) की भूमिका निभाती है, क्योंकि परवर्ती नीतिगत विकास — विशेषतः सशर्त अनुदानों की बढ़ती हिस्सेदारी — का मूल्यांकन इसी संस्तुति की कसौटी पर संभव है।

2.3 डिजिटल शासन पर उभरता साहित्य

ई-ग्रामस्वराज और संबद्ध डिजिटल पहलों पर उपलब्ध साहित्य अधिकांशतः वर्णनात्मक अथवा मूल्यांकनपरक है। आधिकारिक विमर्श में इन पहलों को पारदर्शिता, दक्षता और वास्तविक-समय निगरानी की उपलब्धियों के रूप में प्रस्तुत किया गया है (पंचायती राज मंत्रालय, 2024)। नीति-शोध संस्थानों के हालिया विश्लेषण अधिक संतुलित चित्र देते हैं। IMPRI (2025) ने ई-ग्रामस्वराज के क्रियान्वयन की समीक्षा में डेटा-अपलोड में विलंब, राज्यों के मध्य असमान अंगीकरण तथा उपयोगकर्ता-अनुभव की कठिनाइयों को चिह्नित किया है। ग्राम पंचायत विकास योजना के संदर्भ में यह भी दर्ज किया

गया है कि अनेक पंचायतें पूर्व-निर्मित टेम्पलेटों पर निर्भर रहती हैं अथवा बिना नवीन आवश्यकता-आकलन के विगत वर्षों के प्रस्ताव दोहरा देती हैं (IMPRI, 2026)। यह अवलोकन प्रस्तुत शोध पत्र की केंद्रीय चिंता — योजना-प्रक्रिया का यांत्रिकीकरण — का प्रारंभिक साक्ष्य है, यद्यपि उपलब्ध साहित्य इसे स्वायत्तता के सैद्धांतिक प्रश्न से नहीं जोड़ता।

2.4 शोध-अंतराल

उपर्युक्त समीक्षा से तीन बातें स्पष्ट होती हैं। पहली — विकेंद्रीकरण का शास्त्रीय साहित्य समृद्ध है, किंतु वह मुख्यतः डिजिटल-पूर्व संस्थागत यथार्थ पर केंद्रित है। दूसरी — डिजिटल शासन पर उपलब्ध लेखन या तो उपलब्धि-केंद्रित सरकारी विमर्श है, या क्रियान्वयन-कठिनाइयों की सूची; दोनों ही स्थितियों में तकनीकी वास्तुकला और राजनीतिक सत्ता के अंतर्संबंध का सैद्धांतिक विश्लेषण अनुपस्थित है। तीसरी — ई-निगरानी तंत्रों को पंचायती स्वायत्तता के संवैधानिक प्रश्न से जोड़ने वाला व्यवस्थित अध्ययन, विशेषतः हिंदी अकादमिक जगत में, अभी विरल है। प्रस्तुत शोध पत्र इसी त्रिकोणीय अंतराल को संबोधित करता है। यह दावा विनम्रता

के साथ किया जा रहा है — विरल का अर्थ अनुपस्थित नहीं होता, और यह संभव है कि समानांतर शोध अन्यत्र प्रगति पर हो।

3. सैद्धांतिक ढांचा

ई-अभिभावकत्व की अवधारणा शून्य से नहीं गढ़ी गई है। यह राजनीति विज्ञान और सार्वजनिक प्रशासन की तीन सुस्थापित सैद्धांतिक परंपराओं के संगम पर खड़ी है — जेम्स स्कॉट का “सुपाठ्यता” सिद्धांत, फूको का अनुशासनात्मक सत्ता-विमर्श, और लिप्स्की का सड़क-स्तरीय नौकरशाही सिद्धांत। तीनों को क्रमशः देखना उपयोगी होगा, क्योंकि प्रत्येक सिद्धांत ई-निगरानी की एक भिन्न परत को उजागर करता है।

3.1 स्कॉट: राज्य की दृष्टि और सुपाठ्यता की राजनीति

जेम्स स्कॉट ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ में यह स्थापित किया कि आधुनिक राज्य अपने समाज को “सुपाठ्य” (legible) बनाना चाहता है — अर्थात् उसे ऐसे सरलीकृत खाँचों, मानचित्रों और वर्गीकरणों में ढालना चाहता है जिन्हें केंद्र से पढ़ा, गिना और नियंत्रित किया जा सके (Scott, 1998)। स्कॉट का मूल तर्क सावधानी की माँग करता है: राज्य के ये सरलीकृत

खाँचे स्थानीय, व्यावहारिक ज्ञान — जिसे वे यूनानी शब्द मेटिस (metis) से पुकारते हैं — की उपेक्षा करते हैं, और यही उपेक्षा बड़ी योजनाओं की असफलता का कारण बनती है। ई-निगरानी तंत्र इस सिद्धांत का लगभग पाठ्यपुस्तकीय उदाहरण है। पोर्टल का डॉपडाउन मेन्यू सुपाठ्यता का उपकरण है — गाँव की जटिल, बहुरंगी आवश्यकताएँ पूर्व-निर्धारित श्रेणियों में सिमट जाती हैं। जो आवश्यकता किसी श्रेणी में नहीं समाती, वह प्रशासनिक दृष्टि से अस्तित्वहीन हो जाती है। गाँव अब उतना ही है, जितना पोर्टल देख सकता है।

3.2 फूको: निगरानी और अनुशासनात्मक सत्ता

मिशेल फूको ने बेंथम के पैनोप्टिकॉन — वह वृत्ताकार कारागार जिसके केंद्रीय मीनार से हर कैदी दिखता है, पर कैदी को यह नहीं दिखता कि उसे कब देखा जा रहा है — को आधुनिक सत्ता का रूपक बनाया (Foucault, 1977)। उनका सूक्ष्म बिंदु यह था कि निरंतर दृश्यता की संभावना मात्र से निगरानी का पात्र स्वयं को अनुशासित करने लगता है; सत्ता को बल-प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं रहती। वास्तविक-समय डैशबोर्ड,

जियो-टैग की गई परिसंपत्तियाँ और सार्वजनिक व्यय-रिपोर्टें इसी तर्क पर कार्य करती हैं। पंचायत यह कभी नहीं जानती कि उसकी किस प्रविष्टि की जाँच कब होगी, अतः वह हर प्रविष्टि ऐसे करती है मानो जाँच चल रही हो। यहाँ एक स्वीकारोक्ति उचित है — फूको का ढाँचा इस शोध पत्र पर पूर्णतः आरोपित नहीं किया जा सकता। फूको की चिंता अनुशासन के सूक्ष्म, आंतरिक तंत्रों से थी; ई-निगरानी में नियंत्रण का एक स्थूल, वित्तीय आयाम भी है — प्रविष्टि नहीं, तो भुगतान नहीं। यह अनुशासन नहीं, प्रत्यक्ष निर्भरता है। इसीलिए फूको यहाँ उपयोगी हैं, पर्याप्त नहीं।

3.3 लिप्स्की: विवेकाधिकार का प्रश्न

माइकल लिप्स्की ने दिखाया था कि नीति का वास्तविक स्वरूप विधायिका में नहीं, बल्कि अग्रिम पंक्ति के उन कर्मियों के दैनिक निर्णयों में तय होता है जो नागरिकों से सीधे संवाद करते हैं; इन “सड़क-स्तरीय नौकरशाहों” (street-level bureaucrats) का विवेकाधिकार — नियमों की व्याख्या कर परिस्थिति के अनुसार निर्णय लेने की छूट — नीति-क्रियान्वयन का अनिवार्य अंग है (Lipsky, 1980)। सरपंच और पंचायत सचिव इसी अर्थ में

सड़क-स्तरीय कर्ता हैं। डिजिटल प्रणालियाँ इस विवेकाधिकार के साथ कुछ विशिष्ट करती हैं: वे उसे प्रतिबंधित नहीं करतीं, संहिताबद्ध कर देती हैं। जो निर्णय पहले परिस्थिति देखकर लिया जा सकता था, वह अब सॉफ्टवेयर के अनुमत विकल्पों में पहले से बंद है। विवेकाधिकार समाप्त नहीं होता — वह पोर्टल के डिज़ाइनर के पास स्थानांतरित हो जाता है, जो गाँव से हजार किलोमीटर दूर बैठा है।

3.4 संश्लेषण: ई-अभिभावकत्व की संकल्पना

उपर्युक्त तीनों परंपराओं के संश्लेषण से ई-अभिभावकत्व की कार्यकारी परिभाषा निर्मित होती है। ई-अभिभावकत्व वह स्थिति है जिसमें विधिक रूप से स्वायत्त स्थानीय संस्था की निर्णय-क्षमता डिजिटल वास्तुकला के तीन तंत्रों द्वारा व्यवहारतः संकुचित हो जाती है: (क) विकल्पों का पूर्व-निर्धारण — स्कॉट की सुपाद्यता, (ख) निरंतर दृश्यता से उत्पन्न आत्म-अनुशासन — फूको का पैनोप्टिकॉन, और (ग) विवेकाधिकार का ऊर्ध्वगामी स्थानांतरण — लिप्स्की का उलटा रूप। इस परिभाषा की परीक्षण-योग्य कसौटी सरल है: यदि

कोई पंचायत विधिक रूप से जो निर्णय ले सकती है, वह तकनीकी रूप से नहीं ले सकती — तो ई-अभिभावकत्व उपस्थित है। खंड 6 का विश्लेषण इसी कसौटी पर संचालित होगा।

4. उद्देश्य एवं शोध प्रश्न

प्रस्तुत शोध पत्र के तीन उद्देश्य हैं। पहला — 73वें संविधान संशोधन द्वारा परिकल्पित स्वायत्तता और ई-निगरानी तंत्रों की व्यावहारिक वास्तुकला के मध्य अंतराल का व्यवस्थित परीक्षण। दूसरा — इस अंतराल को सिद्धांतबद्ध करने हेतु ई-अभिभावकत्व की अवधारणा का निर्माण एवं अनुप्रयोग। तीसरा — पारदर्शिता के लाभों की रक्षा करते हुए स्वायत्तता की पुनर्बहाली के नीतिगत विकल्पों की पहचान।

इन उद्देश्यों से तीन शोध प्रश्न निकलते हैं:

शोध प्रश्न 1: ई-निगरानी तंत्र (ई-ग्रामस्वराज, PFMS-एकीकरण, जियो-टैगिंग, ऑनलाइन स्वीकृति-श्रृंखला) पंचायतों की वित्तीय एवं योजनागत स्वायत्तता को किन विशिष्ट तंत्रों के माध्यम से प्रभावित करते हैं?

शोध प्रश्न 2: क्या यह प्रभाव द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (2007) द्वारा

निर्धारित विकेंद्रीकरण-मानकों की कसौटी पर पुनः-केंद्रीकरण की श्रेणी में आता है?

शोध प्रश्न 3: पारदर्शिता और स्वायत्तता के मध्य संतुलन के लिए कौन-से संस्थागत एवं तकनीकी-डिज़ाइन विकल्प उपलब्ध हैं?

5- शोध पद्धति

यह शोध पत्र गुणात्मक-विश्लेषणात्मक (qualitative-analytical) पद्धति पर आधारित है और इसका समस्त डेटा द्वितीयक स्रोतों से लिया गया है। स्रोतों का चयन तीन मानदंडों पर किया गया: प्रामाणिकता, सत्यापन-योग्यता और प्रासंगिकता। तदनुसार तीन प्रकार के स्रोत प्रयुक्त हुए। पहला — आधिकारिक सरकारी दस्तावेज़: पंचायती राज मंत्रालय की रिपोर्टें, ई-ग्रामस्वराज पोर्टल के दस्तावेज़, 15वें वित्त आयोग की रिपोर्ट और द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की छठी रिपोर्ट। दूसरा — नीति-शोध संस्थानों के अध्ययन, विशेषतः Accountability Initiative का PAISA अध्ययन। तीसरा — पीयर-रिव्यूड अकादमिक साहित्य और शास्त्रीय सैद्धांतिक ग्रंथ।

विश्लेषण की विधि दस्तावेज़-विश्लेषण (document analysis)

है, जिसे खंड 3 में निर्मित ई-अभिभावकत्व की परीक्षण-योग्य कसौटी द्वारा निर्देशित किया गया है। प्रत्येक ई-निगरानी तंत्र को इस प्रश्न पर परखा गया: क्या यह तंत्र पंचायत की विधिक निर्णय-क्षमता और व्यावहारिक निर्णय-क्षमता के बीच अंतराल उत्पन्न करता है? विश्लेषण को द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (2007) के विकेंद्रीकरण-मानकों की कसौटी पर भी रखा गया, ताकि निष्कर्ष व्यक्तिपरक न होकर एक स्वीकृत नीतिगत मानक से बँधे रहें।

पद्धति की सीमाएँ स्पष्ट रूप से स्वीकार की जाती हैं। द्वितीयक डेटा पर निर्भरता का अर्थ है कि यह अध्ययन प्राथमिक क्षेत्रीय अनुभव — सरपंचों और सचिवों के प्रत्यक्ष साक्षात्कार — प्रस्तुत नहीं करता। अतः इसके निष्कर्ष सैद्धांतिक एवं

दस्तावेज़-आधारित हैं, जिन्हें भविष्य के क्षेत्रीय अध्ययन परखेंगे। यह कमज़ोरी नहीं, दायरे की ईमानदार घोषणा है। इसके अतिरिक्त, चूँकि ई-निगरानी तंत्र निरंतर विकसित हो रहे हैं, इस अध्ययन के निष्कर्ष एक विशिष्ट समय-बिंदु (2020-2025) की स्थिति को प्रतिबिंबित करते हैं।

6- विश्लेषण एवं विवेचना

इस खंड में विश्लेषण को चार उप-विषयों में संगठित किया गया है: वित्तीय स्वायत्तता का संकुचन, योजना-निर्माण का यांत्रिकीकरण, ई-निगरानी का सकारात्मक पक्ष, और राज्य-स्तरीय विषमता। विश्लेषण के आरंभ में एक तुलनात्मक तालिका (तालिका 1) संवैधानिक वादे और डिजिटल वास्तविकता के अंतराल को एक दृष्टि में प्रस्तुत करती है।

तालिका 1 — संवैधानिक प्रावधान बनाम ई-निगरानी की व्यावहारिक स्थिति

आयाम	73वें संशोधन का संवैधानिक वादा	ई-निगरानी तंत्र की व्यावहारिक स्थिति
निर्णय का स्थान	ग्राम सभा (अनुच्छेद 243A)	पोर्टल की स्वीकृत श्रेणियाँ एवं ज़िला-स्तरीय अनुमोदन
योजना-निर्माण	स्थानीय आवश्यकता आधारित (अनुच्छेद 243G)	पूर्व-निर्मित टेम्पलेट एवं ड्रॉपडाउन विकल्प
वित्तीय विवेक	स्वशासन की इकाई के रूप में	60% सशर्त अनुदान; PFMS द्वारा नियंत्रित प्रवाह
उत्तरदायित्व की दिशा	नीचे की ओर — ग्राम सभा के प्रति	ऊपर की ओर — पोर्टल एवं ऑडिट के प्रति

स्रोत: संविधान (73वाँ संशोधन) अधिनियम, 1992; पंचायती राज मंत्रालय एवं 15वें वित्त आयोग के दस्तावेजों के आधार पर लेखक द्वारा संकलित।

6.1 वित्तीय स्वायत्तता का संकुचन

वित्तीय स्वायत्तता किसी भी स्वशासी संस्था की आधारशिला है। यहाँ ई-निगरानी का प्रभाव सर्वाधिक स्पष्ट है, और यह प्रभाव दो स्तरों पर कार्य करता है। पहला स्तर संरचनात्मक है — 15वें वित्त आयोग ने ग्रामीण स्थानीय निकायों के अनुदान का 60 प्रतिशत सशर्त (tied) रखा, जिसे केवल पेयजल और स्वच्छता पर व्यय किया जा सकता है (भारत सरकार, 2021)। पंचायत की अपनी प्राथमिकता — चाहे वह विद्यालय की मरम्मत हो या सामुदायिक भवन — इस 60 प्रतिशत को स्पर्श नहीं कर सकती। दूसरा स्तर तंत्रगत है — PFMS-एकीकरण के कारण भुगतान तभी संभव है जब व्यय

पूर्व-स्वीकृत श्रेणी और आवंटन के अनुरूप पोर्टल पर दर्ज हो। यहाँ नियंत्रण नियम-पुस्तिका से निकलकर सॉफ्टवेयर की शर्त बन जाता है।

इस संकुचन को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखना आवश्यक है। कर्नाटक के मुलबगल तालुक के अध्ययन में यह पाया गया था कि पंचायतों ने अपने क्षेत्र में हुए कुल सरकारी व्यय का मात्र 3 प्रतिशत स्वयं व्यय किया (Accountability Initiative, 2016)। यह आँकड़ा ई-निगरानी के व्यापक विस्तार से पूर्व का है, जो एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष की ओर संकेत करता है: डिजिटल तंत्र ने वित्तीय स्वायत्तता का संकुचन उत्पन्न नहीं किया — उसने पहले से विद्यमान संकुचन को स्वचालित और स्थायी बना दिया। यही

ई-अभिभावकत्व की सूक्ष्मता है। पुराना नियंत्रण मानवीय था, अतः उसमें छूट और अपवाद की गुंजाइश थी; नया नियंत्रण संहिताबद्ध है, अतः निर्विवाद और अनम्य।

निम्नलिखित तालिका प्रमुख डिजिटल तंत्रों को उनके नियंत्रण-स्तर के अनुसार वर्गीकृत करती है।

तालिका 2 — प्रमुख ई-निगरानी तंत्र एवं स्वायत्तता पर उनका प्रभाव

तंत्र	घोषित उद्देश्य	स्वायत्तता पर प्रभाव
ई-ग्रामस्वराज	एकीकृत योजना एवं लेखांकन	निर्णय की वैधता पोर्टल-प्रविष्टि पर निर्भर
PFMS-एकीकरण	वास्तविक-समय भुगतान	व्यय पूर्व-स्वीकृत श्रेणी तक सीमित
जियो-टैगिंग	परिसंपत्ति सत्यापन	भौतिक प्रगति की केंद्रीय दृश्यता
ऑनलाइन ऑडिट (AuditOnline)	अंकेक्षण-पारदर्शिता	अनुपालन-दबाव; अनुदान-पात्रता की शर्त

स्रोत: पंचायती राज मंत्रालय, ई-ग्रामस्वराज पोर्टल दस्तावेज़ीकरण एवं 15वें वित्त आयोग की रिपोर्ट के आधार पर लेखक द्वारा संकलित।

यहाँ 15वें वित्त आयोग की एक शर्त विशेष उल्लेखनीय है: पंचायत की अंकेक्षित रिपोर्टें सार्वजनिक रूप से उपलब्ध कराना अनुदान-पात्रता की पूर्व-शर्त बना दी गई (भारत सरकार, 2021)। अर्थात् डिजिटल अनुपालन अब धन प्राप्त करने की चाबी है। पारदर्शिता का उपकरण दबाव का उपकरण बन गया।

6.2 योजना-निर्माण का यांत्रिकीकरण

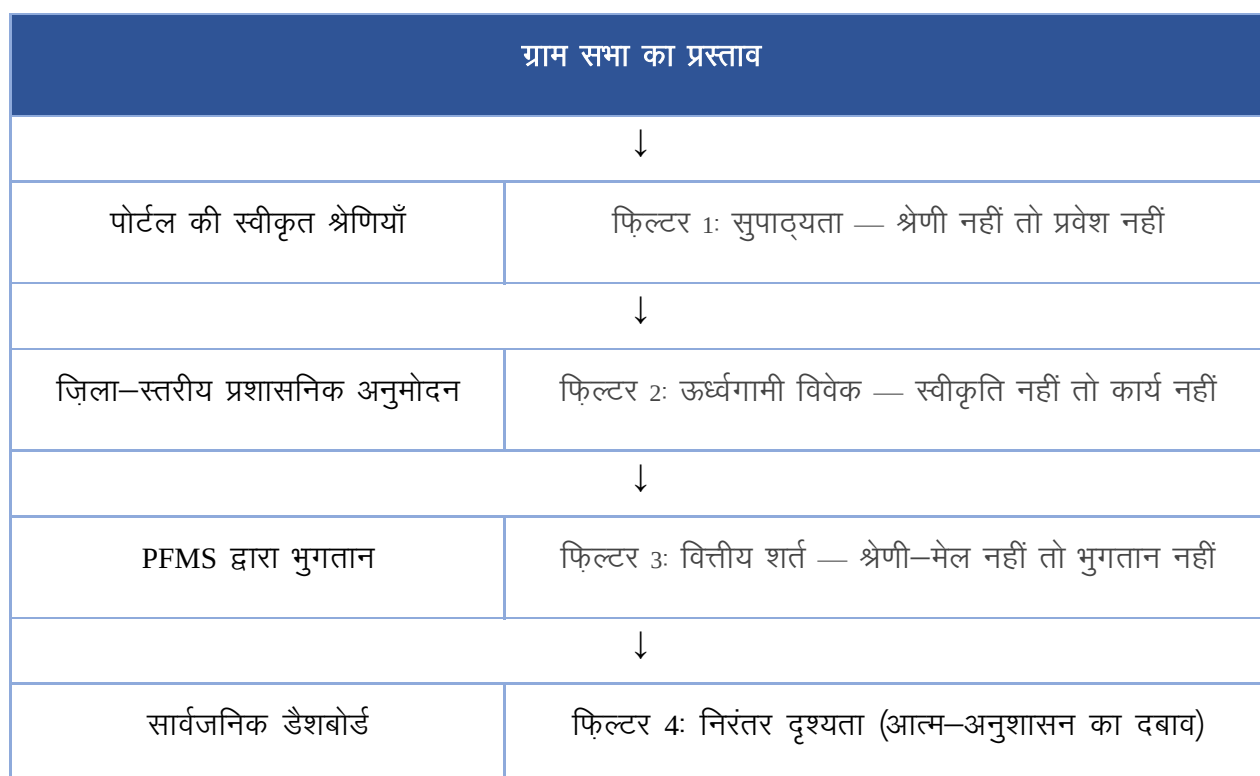
अनुच्छेद 243G की आत्मा योजना-निर्माण में निहित है — यह विचार कि गाँव अपनी आवश्यकताएँ स्वयं तय करे। ग्राम पंचायत विकास योजना (GPDP) इसी आत्मा का संस्थागत रूप है। किंतु धरातल पर एक विपरीत प्रवृत्ति दर्ज हुई है। अध्ययनों में पाया गया कि अनेक पंचायतें पूर्व-निर्मित टेम्पलेटों पर निर्भर रहती हैं अथवा बिना नवीन आवश्यकता-आकलन के विगत वर्षों के

प्रस्ताव दोहरा देती हैं (IMPRI, 2026)। इसका कारण केवल आलस्य नहीं है। जब योजना का ढांचा पहले से पोर्टल में निर्धारित हो, तो नवाचार के लिए स्थान ही संकुचित हो जाता है। गाँव की अनूठी आवश्यकता — जो किसी पूर्व-निर्धारित श्रेणी में नहीं आती — प्रणाली में प्रवेश ही नहीं पा सकती। स्कॉट की सुपाद्यता यहाँ प्रत्यक्ष रूप से क्रियाशील है: जो श्रेणी में नहीं समाता, वह अस्तित्वहीन है। यह ई-अभिभावकत्व की परीक्षण-योग्य कसौटी पर खरा उतरता है। पंचायत

विधिक रूप से किसी भी स्थानीय आवश्यकता की योजना बना सकती है; किंतु तकनीकी रूप से वह केवल उन्हीं आवश्यकताओं की योजना बना सकती है जिनके लिए पोर्टल में श्रेणी उपलब्ध है। विधिक क्षमता और व्यावहारिक क्षमता के बीच का यह अंतराल ही ई-अभिभावकत्व है।

निम्नलिखित संकल्पनात्मक आरेख इस संपूर्ण तंत्र को एक प्रवाह के रूप में प्रस्तुत करता है।

आरेख 1 — ई-अभिभावकत्व का संकल्पनात्मक मॉडल



स्रोत: लेखक द्वारा निर्मित संकल्पनात्मक मॉडल, खंड 3 एवं 6 के विश्लेषण पर आधारित।

आरेख का पाठ स्पष्ट है: ग्राम सभा का मूल प्रस्ताव चार क्रमिक फ़िल्टरों से गुज़रकर ही मूर्त रूप लेता है, और प्रत्येक फ़िल्टर पर निर्णय-शक्ति का कुछ अंश ऊपर की ओर रिसता जाता है।

6.3 दूसरा पक्ष: ई-निगरानी के

वास्तविक लाभ

अब तक का विश्लेषण एकतरफ़ा प्रतीत हो सकता है, अतः संतुलन आवश्यक है। ई-निगरानी तंत्रों के लाभ काल्पनिक नहीं, ठोस हैं। डिजिटल भुगतान ने बिचौलियों की शृंखला को छोटा किया है, जिससे धन के रिसाव में कमी आई है (पंचायती राज मंत्रालय, 2024)। जियो-टैगिंग ने “कागज़ी परिसंपत्तियों” — अर्थात् केवल दस्तावेज़ों में निर्मित सड़कों और भवनों — के युग पर लगभग विराम लगाया है। सार्वजनिक डैशबोर्ड ने नागरिकों को वह सूचना सुलभ कराई है जो पहले फाइलों में बंद रहती थी, और इस प्रकार सामाजिक अंकेक्षण (social audit) को सशक्त किया है।

यहाँ एक सूक्ष्म किंतु महत्वपूर्ण बिंदु उभरता है। ये लाभ मुख्यतः उत्तरदायित्व के क्षेत्र में हैं, जबकि हानियाँ मुख्यतः स्वायत्तता के क्षेत्र में। दोनों को एक-दूसरे का विकल्प मान लेना भूल होगी।

वास्तविक प्रश्न यह नहीं है कि पारदर्शिता चाहिए या स्वायत्तता; प्रश्न यह है कि क्या पारदर्शिता के लिए स्वायत्तता की बलि अनिवार्य है। इस शोध पत्र का उत्तर है — नहीं। यही निष्कर्ष खंड 7 के नीतिगत प्रस्ताव की नींव बनता है।

6.4 राज्य-स्तरीय विषमता एवं

डिजिटल विभाजन

अंतिम उप-विषय एक ऐसी जटिलता है जो सरल तर्क-रेखा को समृद्ध करती है। ई-निगरानी का प्रभाव सर्वत्र एकसमान नहीं है। अध्ययनों में राज्यों के मध्य अंगीकरण की गति में गहरी असमानता दर्ज हुई है — कुछ राज्यों ने प्रशिक्षण और क्षमता-निर्माण में निवेश किया, जबकि अन्य पिछड़ गए (IMPRI, 2025)। जहाँ डिजिटल साक्षरता और कनेक्टिविटी कमज़ोर है, वहाँ एक विडंबनापूर्ण परिणाम सामने आता है: निर्वाचित सरपंच की भूमिका सिकुड़ती है और डेटा-एंट्री ऑपरेटर अथवा पंचायत सचिव की भूमिका फैलती है। जो व्यक्ति पोर्टल संचालित कर सकता है, वास्तविक शक्ति उसी के हाथ में केंद्रित हो जाती है। लोकतांत्रिक वैधता (निर्वाचित प्रतिनिधि) और तकनीकी सामर्थ्य (ऑपरेटर) के बीच यह विभाजन

ई-अभिभावकत्व का सबसे विचलित करने वाला पक्ष है — यहाँ सत्ता न केवल ऊपर, बल्कि निर्वाचित से अनिर्वाचित की ओर भी खिसकती है।

यह असमानता एक चेतावनी भी है। ई-निगरानी का समान ढांचा असमान क्षमताओं वाले राज्यों पर आरोपित करने से डिजिटल विभाजन स्वायत्तता के विभाजन में बदल सकता है।

7. निष्कर्ष एवं नीतिगत सुझाव

इस शोध पत्र ने एक ऐसे विरोधाभास की पड़ताल की जो प्रायः पारदर्शिता के उत्सव में ओझल रह जाता है। 73वें संविधान संशोधन ने पंचायतों को स्वशासन की संस्था बनाया, किंतु ई-निगरानी तंत्रों की डेटा-वास्तुकला ने उस स्वशासन की परिचालनात्मक ताकत को चुपचाप ऊपरी स्तरों की ओर स्थानांतरित कर दिया। इस परिघटना को सिद्धांतबद्ध करने हेतु शोध पत्र ने ई-अभिभावकत्व की मौलिक अवधारणा प्रस्तावित की — वह स्थिति जिसमें विधिक स्वायत्तता अक्षुण्ण बनी रहती है, जबकि प्रभावी स्वायत्तता सुपाठ्यता, पैनाप्टिक दृश्यता और विवेकाधिकार-स्थानांतरण के तीन तंत्रों द्वारा संकुचित होती जाती है। कानून कुछ

नहीं छीनता। फिर भी स्वायत्तता सिकुड़ जाती है। यही ई-अभिभावकत्व की विशिष्टता है।

तीन शोध प्रश्नों के आलोक में निष्कर्ष स्पष्ट हैं। पहले प्रश्न के उत्तर में विश्लेषण ने दर्शाया कि प्रभाव किसी एकल तंत्र से नहीं, बल्कि पोर्टल-श्रेणियों, PFMS-नियंत्रित निधि-प्रवाह और ऊर्ध्वगामी अनुमोदन-शृंखला के संयुक्त संचालन से उत्पन्न होता है। दूसरे प्रश्न के संदर्भ में, यह प्रभाव द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (2007) के मानकों की कसौटी पर पुनः-केंद्रीकरण की श्रेणी में आता है — क्योंकि आयोग ने जिस असशर्त निधि और अनुमोदन-मुक्ति की संस्तुति की थी, व्यवहार ठीक उसके विपरीत गया। तीसरे प्रश्न का उत्तर इस निष्कर्ष के बाद के [अंड में नीतिगत सुझावों के रूप में प्रस्तुत है।

यहाँ एक संतुलित स्वीकृति आवश्यक है। ई-निगरानी को समाप्त करने का तर्क न तो व्यावहारिक है, न वांछनीय। इन तंत्रों ने वित्तीय रिसाव घटाया, कागज़ी परिसंपत्तियों पर अंकुश लगाया और नागरिकों को सूचना-सम्पन्न बनाया — ये उपलब्धियाँ वास्तविक हैं। समस्या तकनीक में नहीं, उसकी अभिकल्पना

(design) में निहित सत्ता-संबंधों में है। अतः समाधान भी अभिकल्पना के स्तर पर ही खोजा जाना चाहिए। इसी दिशा में यह शोध पत्र “उत्तरदायी डिजिटलीकरण” (accountable digitalisation) का ढांचा प्रस्तावित करता है, जिसके पाँच स्तंभ हैं। पहला — असशर्त निधि का विस्तार। पारदर्शिता का दबाव बनाए रखते हुए भी, अनुदानों में असशर्त हिस्से का अनुपात बढ़ाया जाए, ताकि पंचायत की प्राथमिकता-निर्धारण की क्षमता पुनर्जीवित हो। दूसरा — पोर्टल-अभिकल्पना में लचीलापन। ई-ग्रामस्वराज में एक “स्थानीय आवश्यकता” श्रेणी अनिवार्य रूप से जोड़ी जाए, जो पूर्व-निर्धारित सूची से बाहर की माँगों को भी प्रणाली में प्रवेश दे — ताकि गाँव की अनूठी आवश्यकता सुपाद्यता के अभाव में अदृश्य न हो जाए। तीसरा — विकेंद्रित प्रशिक्षण एवं क्षमता-निर्माण, जिससे निर्वाचित प्रतिनिधि पोर्टल पर आश्रित होने के बजाय उसका नियंत्रण स्वयं कर सकें; अन्यथा शक्ति निर्वाचित सरपंच से अनिर्वाचित ऑपरेटर की ओर खिसकती रहेगी। चौथा — राज्य-स्तरीय विषमता के प्रति संवेदनशील क्रियान्वयन, ताकि एकसमान डिजिटल ढांचा असमान क्षमताओं वाले राज्यों में डिजिटल विभाजन को स्वायत्तता

के विभाजन में न बदल दे। पाँचवाँ — अभिकल्पना-प्रक्रिया में पंचायत-प्रतिनिधियों की भागीदारी, अर्थात् यह निर्णय कि पोर्टल में कौन-सी श्रेणियाँ होंगी, केवल तकनीकी विशेषज्ञों का नहीं, निर्वाचित प्रतिनिधियों का भी हो।

इन सुझावों की एक साझा अंतर्दृष्टि है: पारदर्शिता और स्वायत्तता परस्पर विरोधी नहीं हैं। इन्हें विकल्प के रूप में प्रस्तुत करना ही मूल भूल है। एक ऐसी प्रणाली की कल्पना संभव है जो व्यय को पारदर्शी बनाए, किंतु प्राथमिकता का निर्णय गाँव पर छोड़े। तकनीक को यह तय नहीं करना चाहिए कि गाँव को क्या चाहिए; उसे केवल यह दर्ज करना चाहिए कि गाँव ने क्या तय किया।

अंत में, इस शोध पत्र की सीमाओं की पुनरावृत्ति उचित होगी। यह अध्ययन पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, अतः इसके निष्कर्ष सैद्धांतिक एवं दस्तावेज़-आधारित हैं। ई-अभिभावकत्व की अवधारणा को अनुभवजन्य पुष्टि के लिए क्षेत्रीय अध्ययन की आवश्यकता है — विशेषतः सरपंचों और पंचायत सचिवों के साक्षात्कार, जो यह उजागर कर सकें कि पोर्टल की सीमाएँ दैनिक निर्णयों में किस रूप में अनुभव की जाती

हैं। यह अंतराल इस शोध पत्र की कमजोरी नहीं, बल्कि भावी शोध का निमंत्रण है। ई-अभिभावकत्व की संकल्पना को यहाँ एक विश्लेषणात्मक औज़ार के रूप में प्रस्तुत किया गया है, इस आशा के साथ कि यह डिजिटल गवर्नेंस और स्थानीय स्वायत्तता के अंतर्संबंध पर आगे के अध्ययनों को दिशा देगा।

संदर्भ—सूची (References)

1. Accountability Initiative. (2016). PAISA for Panchayats: Tracking fiscal devolution to local governments in Karnataka. Centre for Policy Research. <https://accountabilityindia.in/publication/paisa-for-panchayats-report/>
2. Foucault, M. (1977). Discipline and punish: The birth of the prison (A. Sheridan, Trans.). Vintage Books. (Original work published 1975)
3. IMPRI. (2025). eGramSwaraj 2020: Transforming Panchayati Raj through digital governance. Impact and Policy Research Institute. <https://www.impriindia.com/insights/egramswaraj-transforming-panchayat/>
4. IMPRI. (2026). Gram Panchayat Development Plan (GPD). Impact and Policy Research Institute. <https://www.impriindia.com/insights/policy-update/gram-panchayat-development-plan/>
5. Lipsky, M. (1980). Street-level bureaucracy: Dilemmas of the individual in public services. Russell Sage Foundation.
6. Manor, J. (1999). The political economy of democratic decentralization. The World Bank. <https://documents.worldbank.org/evaluation/publication/documents-reports/documentdetail/386101468739238037>
7. Mathew, G. (1994). Panchayati Raj: From legislation to movement. Concept Publishing Company. <https://www.barnesandnoble.com/w/panchayati-raj-from-legislation-to-movement-george-mathew/1142702643>
8. Pal, M. (2004, January 10). Panchayati Raj and rural governance: Experiences of a decade. Economic and Political Weekly, 39(2). <https://www.epw.in/journal/2004/02>

9. Raghunandan, T. R. (Ed.). (2012). Decentralisation and local governments: The Indian experience. Orient BlackSwan & Economic and Political Weekly.
<https://searchworks.stanford.edu/view/9932124>
10. Scott, J. C. (1998). Seeing like a state: How certain schemes to improve the human condition have failed. Yale University Press.
<https://yalebooks.yale.edu/book/9780300078152/seeing-like-a-state/>
11. द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग. (2007). छठी रिपोर्ट: स्थानीय शासन — भविष्य की एक प्रेरक यात्रा (Local governance: An inspiring journey into the future). भारत सरकार.
https://mohua.gov.in/upload/upload_files/files/Microsoft%20Word%20-%206thReport29.pdf
12. पंचायती राज मंत्रालय. (2024). ई-ग्रामस्वराज पोर्टल दस्तावेज़ एवं वर्ष-अंत समीक्षा 2024. भारत सरकार.
<https://panchayat.gov.in/en/e-gramswaraj/>
13. भारत सरकार. (2021). पंद्रहवें वित्त आयोग की रिपोर्ट (2021–26). वित्त मंत्रालय. <https://doe.gov.in/15th-finance-commission>